

## स्नातक—हिन्दी—प्रतिष्ठा, खण्ड—तीन

### लोकधर्मी नाट्य

— डॉ. मुन्ना साह

लोकधर्मी नाट्य आम आदमी के अपने रूप होते हैं जिन्हें जन नाट्य भी कहते हैं। जिनमें जीवन की विभिन्न परिस्थितियों को यथार्थ के साथ प्रस्तुत किया जाता था। वास्तव में नाटक का मूल अर्थ ही है जीवन को रंगमंच पर उतार देना और जो नाटककार जितनी सूक्ष्मता से लोक जीवन को मंच पर प्रस्तुत कर देता है, वह और उसकी रचना उतनी ही प्रभावशाली और स्थायित्व लिए होती है। भारत के नाटककार अपने से सामाजिकों का मनोरंजन करते थे, वहीं वे उनके सम्मुख समाज का नग्न चित्र भी उपस्थित करने में नहीं चूकते थे। वे समाज के रूढ़िवादी शक्तियों की खिल्ली उड़ाया करते थे। हास्य व्यंग्य का सहारा लेकर विदूषक या गम्भीर पात्र के द्वारा खोखली मान्यताओं और परम्पराओं की पोल खोलते थे। साधारण रूप से नहीं कही जाने वाली ऐसी ठोस बातें भी वे इन पात्रों के द्वारा कह दिया करते थे।

इस प्रकार ये लोक अभिनेता सामाजिक जीवन को जागृत और परिष्कृत करने के साथ-साथ समाज के सच्चे प्रहरी थे। इन लोक नाटककारों ने शास्त्रीय नाटकों को भी प्रभावित किया था और उनमें आत्मिक बल पैदा किया था। कालिदास ने इसी प्रभाव से राज्य, राजनीति, राजकीय जीवन, राजशास्त्र, पराराष्ट्र नीति, सामन्त, राज्याधिकारी, कर्मचारी आदि के कर्तव्यों-अधिकारों की विशद व्याख्या की है। उन्होंने युग के आर्थिक पक्ष को आंका है और आम आदमी को सोचने के लिए मजबूर किया है कि वह अपने हित के लिए आगे बढ़े और अपने अधिकारों के लिए जागरूक हों। संस्कृत नाटककारों ने जहाँ अपने नाटकों में धर्म की चर्चा की है, मानव मनोविज्ञान को पहचाना है, वहीं समाज को विभिन्न स्तरों पर नंगा भी किया है। आचार्य शुक्ल की दृष्टि में आनंद देने वाला साहित्य लोकमंगल की सिद्धावस्था तो हो सकता है, साधनावस्था नहीं, जब कि लोक कल्याण के लिए साधनावस्था की आवश्यकता होती है। इस अवस्था में साहित्य में निष्क्रिय अवस्था से निकलकर सक्रिय परिवर्तनकारी सामाजिक शास्त्र के रूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।

...